बूँद बूँद बचत

पानी को तरसते शहरों को थार से वर्षा-जल संचय सीखने की ज़रूरत

गर्मियों ने दस्तक दे दी है और पानी को लेकर कर्णाटक की राजधानी से लेकर राजस्थान की राजधानी तक हाहाकार मचना शुरू हो गया है। जहाँ एक तरफ बंगलौर में भू-जल का "पाताल" तक जाना अखबारों की सुर्खियाँ बन रहा है, वहीँ जयपुर- अजमेर के एकमात्र पेयजल के साधन "बीसलपुर" में भी बहुत कम पानी बचा है। रेल और टेंकरों से पानी-सप्लाई की फाइलें तेज़ रफ़्तार से चल रही है। ऐसे में ज़रा पश्चिमी राजस्थान के रेगिस्तान की कल्पना कीजिये- जहाँ १५-२५ घरों के कई गाँव- ढाणियां इतने दूर-दूर बसे हैं कि वहां नल से जल पहुँचाने की कोई योजना मूर्त रूप नहीं ले पा रही; फिर भी वहां से "पानी नहीं होने" की कोई खबर कभी सामने नहीं आती !!!

देश का सबसे बड़ा राज्य राजस्थान औसत वर्षा के मामले में नीचे के पायदानों में नज़र आता है। जहाँ देश की सालाना औसत वर्षा १२५ सेंटीमीटर है, वहीँ पश्चिमी राजस्थान में यह तकरीबन २५-३० सेंटीमीटर है। दिल्ली में सालभर में १५० सेंटीमीटर और कोंकण- मेघालय में ५००-१००० सेंटीमीटर की बारिश की तुलना में बाड़मेर-जैसलमेर में दिल्ली से ५-६ गुणा कम पानी बरस रहा हो तो भी वहां कभी पानी की रेलें नहीं चलती !! पानी कम और गर्मी ज्यादा हो तो जीना दूभर हो जाता है, ऐसे में भी रेगिस्तान के ये गाँव आज भी आबाद है।

वैज्ञानिक बताते हैं कि कभी यहाँ समंदर था। लहरें उठा करती थी। अब यहाँ रेत का समंदर है और रेत के बवंडर उठते हैं। एक समंदर से दूसरे समंदर में बदलने में लाखों- करोड़ों साल लगे होंगे पर यहाँ के लोगों ने गांवों के नामों में आज भी समंदर को जिंदा रखा है। *(डिंगल भाषा में सरोवर को "सर" कहते हैं और पश्चिमी राजस्थान के १०० से अधिक स्थानों के नामों में 'सर' शब्द का प्रयोग होता है- जैसे जैतसर, लूणकरणसर, कतियासर, बिंझासर)* और समंदर को जिंदा रखते हुए उन्होंने जल संचय के अपने तरीके भी ईजाद किये, जो आज सैकड़ों सालों के बाद भी मरुधरा में पूरे साल पीने का पानी उपलब्ध करवा रहे हैं। इस इलाके के निवासियों ने कभी वर्षा-जल संचय की अपनी तकनीकों- युक्तियों का "जस-ढोल" (यशगान) नहीं बजाया। आज देश के लगभग सभी छोटे- बड़े शहर खूब अच्छी वर्षा होने के बाद भी पानी जुटाने के मामले में कंगाल हो रहे हैं। ऐसे में मरुभूमि में फली-फूली जल संग्रह की पारंपरिक परंपरा का जस-ढोल बजना ही चाहिए।

हिंदी की कहावत "बहता जल निर्मला" पश्चिमी राजस्थान में आकर ठिठक जाती है। यहाँ कुइयों और टांकों में एकत्र किया पानी साल भर "निर्मल" और पीने योग्य बना रहता है। जल संचय का तरीका बस वही, जो सदियों से मरुधरा का हर एक शख्स उपयोग करता आया है। बरसात के पानी को इकठ्ठा करो और उसे साल भर चलाओ।

आइये, पहले ज़रा टाँके को जान लें

हर घर या घरों के समूह जिसे ढाणी कहा जाता है; के साथ लगता एक तरफ ढलान वाला चूने- मिट्टी से लिपा हुआ एक आँगन तैयार किया जाता है, अगर घर के बाहर है तो इसकी ढलान एक तरफ होती है और अगर यह पूरी ढाणी के बीच है तो ढलान इसके बीचों-बीच भी हो सकता है। आँगन के आकार के हिसाब से और वहां बरसने वाली बारिश के हिसाब से ज़मीन के भीतर एक गोल कुंड बना लिया जाता है। ये कुंड ही टांका कहलाता है। इसे खड़िया पत्थर (जिप्सम- चूना मिश्रित मिट्टी) की लिपाई करके बनाया जाता है। कुंड के भीतर चिनाई इस ढंग से की जाती है कि उसमें एकत्र होने वाली पानी की एक बूँद भी रिसे नहीं और पानी साल भर सुरक्षित और साफ़ सुथरा बना रहे।

जैसलमेर के जोगियों की ढाणी गाँव में निर्मित एक सार्वजनिक टांका और आगोर (फोटो- राजीव घई)

जिस आँगन से टाँके के लिए पानी एकत्र किया जाता है, वह "आगोर" कहलाता है। आगोर का राजस्थानी में मतलब है- "समेट लेना"। आगोर को खूब साफ़ सुथरा रखा जाता है। वर्षा से पहले तो बहुत बारीकी से सफाई होती है। जूते-चप्पल आगोर में नहीं जा सकते। आगोर की ढाल (ढलान) से बह कर आने वाला पानी एक छोटी कुण्डी के भीतर पहुँचता है। इसमें ओयरे अर्थात छोटे-छोटे सुराख बने होते है। ये ओयरे बारीक मिट्टी- बालू, पत्तियां आदि को रोकते हैं। टांका बड़ा हो या छोटा; इसके ओयरों को कभी खुला नहीं रखा जाता। अछाये (बिना ढके) ओयरों को अशुभ माना जाता है। पानी के संचय में साफ़-सफाई और शुचिता रखना ज़रूरी है। टांकों का एक मुंह ऊपर की ओर खुलता है; जिस से पानी को बाहर निकाला जाता है। इन्हें भी हमेशा ढक कर- (और सुरक्षा के लिए) ताले लगाकर रखा जाता है।

टाँके निजी भी होते हैं और सार्वजनिक भी। निजी टाँके घरों के सामने या पिछवाड़े में बनाये जाते हैं जबकि सार्वजनिक टाँके पंचायती नोहरों या प्रायः एक -दो गांवों के बीच बनाये जाते हैं, जो आते-जाते राहगीरों और उनके पशुओं के लिए पेयजल का स्त्रोत होते हैं। पानी पिलाना पुण्य का काम है, इसलिए कई संपन्न परिवार सार्वजनिक टांकें बनवाकर इसके रखरखाव का जिम्मा किसी स्थानीय परिवार को सौंप देते है।

क्या आपने कुईं का नाम सुना है ?

जिसने कुआं शब्द सुना हो; वो भला कुईं से कैसे अनजान रह सकते हैं? कुईं कुएं का छोटा रूप है, जो मरुभूमि में बनाई जाती है। इसका व्यास बहुत ज्यादा छोटा होता है, जिस से ये धंसती नहीं !! इसकी गहराई कुएं जितनी ही होती

है। इन्हें खास तरह के प्रशिक्षित कारीगर बनाते हैं, जिन्हें 'चेलवा जी' कहा जाता है। कुईं एक और अर्थ में कुएँ से बिल्कुल अलग है। कुआं भूजल को पाने के लिए बनता है पर कुईं भूजल से ठीक वैसे नहीं जुड़ती जैसे कुआं जुड़ता है। कुईं वर्षाजल को बड़े विचित्र ढंग से समेटती है- तब भी जब बारिश नहीं होती। यानि कुईं में न तो सतह पर बहने वाला पानी है-भूजल है। यह तो नेति-नेति जैसा कुछ पेचीदा मामला है।

पाकिस्तान सीमा स्थित गडरा रोड की एक सार्वजनिक कुई से पानी भरती स्थानीय महिलाएं (फोटो- चेतन उदासी)

दरअसल पूरे रेगिस्तान में रेत के नीचे जिप्सम की एक पट्टी (परत) है, जो पानी को ज़मीन में नहीं जाने देती। ये पट्टी वर्षा जल को गहरे खारे भू-जल तक जाने से रोकती है। ऐसी स्थिति में उस क्षेत्र में बरसा पानी भूमि की रेतीली सतह पर नमी की तरह फ़ैल जाता है। रेत के महीन कण दूसरी मिट्टी की तरह नहीं होते और आपस में चिपकते नहीं। ऐसे में इन कणों के बीच कुछ खाली स्थान छूट जाता है, जहाँ ये नमी या कहें पानी एकत्र होता जाता है। ये पानी जिप्सम के कारण न तो ज़मीन में जाता है और ना ही ऊपर वाष्प बनकर उड़ता है, क्योंकि ऊपर रेत मौजूद है। यही पानी रिस कर कुईं में एकत्र होता है, जिसे बाहर निकाल लिया जाता है।

रेत में जमा नमी से पानी की बूंदें बहुत धीरे धीरे रिसती है। दिन भर में एक कुईं में मुश्किल से इतना ही पानी एकत्र होता है कि जिस से २-३ घड़े भर सके। इसीलिए इनका व्यास बहुत कम रखा जाता है और मुंह भी छोटा। छोटे घड़ों या चड़स के माध्यम से पानी बाहर निकाला जाता है।

बिंदु में सिन्धु समाय

"पुर" शब्द पूरी दुनिया में मिलता है, किन्तु "कापुर" शब्द केवल थार रेगिस्तान में मिलता है। कापुर का मतलब सुख-सुविधाओं से वंचित गाँव। कोई गाँव "कापुर" ना कहलायें; इसके लिए पानी का पुख्ता प्रबंध राजस्थान ने किया। बांध-बंधा, ताल-तलाई, जोहड़, नाडी-तालाब, सरोवर, झील... इन सबको बनाकर आसमान से बरसती हर एक बूँद को सहेजना सीखा गया। साईं "इतना" दीजिये के बदले साईं "जितना" दीजिये वामे कुटुंब समा कर दिखाया।

जैसलमेर में आज ५१५ गाँव है। इनमे से ५३ गाँव किसी न किसी वजह से उजड़ चुके। इनमे से सिर्फ एक गाँव को छोड़कर हर गाँव में पानी का अपना प्रबंध है। उजड़ चुके गांवों में भी यह प्रबंध मिलता है। गाँव जानते है कि जितना है, उसी में गुज़ारा करना है। पानी का "बजट" स्थिर है। ऐसे में वो पानी का न अत्यधिक दोहन करते हैं और न ही पानी का बिगाड़ा।

फिर भी, किस्मत देखिये- जल संचय के इन शानदार तरीकों को न किताबों में जगह मिली; न ही इन पर कोई ख़ास "रिसर्च" ही हुए। न सरकारों ने इस पर आगे बढ़ने का सोचा; न ही यहाँ की सामाजिक संस्थाओं ने इस ओर अलख जगाने की सोची। पुराने लोग इसे अगली पीढ़ी को सौंपते आ रहे हैं।

वर्षा जल संचय में राजस्थान के इस हिस्से ने वर्षों की साधना से, अपने ही साधनों से जो ऊँचाई- गहराई छुई है, उसकी ठीक- ठीक जानकारी खूब बारिश के बाद भी प्यासे रह जा रहे देश के कई भागों तक पहुंचनी ही चाहिए। वर्षा जल-संचय (रेन वाटर हार्वेस्टिंग) के ज़रिये हर छत को "आगोर" बनाया जाए और हर घर में एक "टांका" हो, जिसे ठीक उसी प्रकार सहेजा जाए जैसे मरुभूमि-वासी सहेजते हैं तो नल से महीने भर में १००-१२५ रुपये बिल का जल लेने वाले शायद उसकी अहमियत समझ पाएं।

चलते चलते,

ऐसा नहीं है कि बंगलौर- चेन्नई या जयपुर- दिल्ली में कम पानी बरसता है। बंगलौर में औसत ९७ से.मी., चेन्नई में १३० से.मी. तो जयपुर में ७५ से.मी. बारिश सालभर में होती है। पर्याप्त बारिश के बावजूद ये शहर पेयजल के लिए आस-पास के किसी जलाशय या ज़मीनी पानी पर निर्भर है। बढ़ते शहरीकरण ने ज़मीनी पानी को बहुत ज्यादा नीचे पहुंचा दिया है। इन शहरों के आवासीय क्षेत्रों में वर्षा जल संचय (रेन वाटर हार्वेस्टिंग) के ठीक-ठीक आंकड़े तो शायद मौजूद नहीं है, किन्तु यह अवश्य है कि इन महानगरों- शहरों सहित पूरे देश में आने वाले समय में पानी से जुड़ी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए इस दिशा में चेतना निर्माण की खासी ज़रूरत है।

रेल और टेंकरों से पानी पहुँचाने के त्वरित उपायों के स्थान पर सरकारों को भी ऐसे तरीके खोजने चाहिए जो स्थायी हो- सस्टेनेबल हो। प्रकृति के दोहन की बजाय प्रकृति के साथ रहकर जीना हमें सीखना ही होगा वर्ना "कर्णाटक से केपटाउन" बनने में बहुत ज्यादा वक़्त नहीं लगेगा !!

लेख: ओम, अर्बन95 परियोजना टीम, उदयपुर

सन्दर्भ:

1. *आज भी खरे हैं तालाब; लेखक- अनुपम मिश्र १९९३*
2. *राजस्थान की रजत बूँदें; लेखक- अनुपम मिश्र १९९५*
3. *इण्डिया वाटर पोर्टल* https://hindi.indiawaterportal.org/articles/taankaa-raajasathaana-kai-paranparaagata-jala-sangaraha-takanaika-traditional-method-water